शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 अगस्त 2016
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

भिलाली लोकगीतों में कृषक जीवन

गजेंद्र आर्य
तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति अध्ययन शाला
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय
इन्दौर, मध्यप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

पूर्वजों की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के गान को लोकगीत कहते हैं। इस अभिव्यक्ति में व्यक्ति की नहीं समष्टि की भावनायें अभिव्यक्त होती है। निराशा को भस्मीभूत तथा आशा की सृष्टि करने वाले इन लोकगीतों में कई प्रतिभाओं का परिश्रम होता है। शताब्दियों से ये लोकगीत ठिठकते पैरों को गति , जकड़न से मुक्ति और झुलसे अंतर्मन की औषधि करते आए हैं। लोकगीतों में समाज का बड़ा ही सुंदर तथा सजीवन चित्रण पाया जाता है। माता-पुत्री, पिता-पुत्र, भाई-बहन और पति-पत्नी के पारस्परिक प्रेम का जो दिव्य वर्णन इन गीतों में मिलता है वह अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।1

भिलाली लोकगीतों में कृषक जीवन

वाचिक परंपरा में भिलाली लोकगीतों का रूप देखते ही बनता है। भिलाला आदिवासियों की अभिव्यक्ति इन गीतों में बहुत ही सुंदर ढंग से हुई है। धार , बड़वानी, अलीराजपुर जिले में निवासरत इस जनजाति के लोकगीतों में ग्राम्य एवं कृषक जीवन की अभिव्यक्ति प्रमुदित कर देती है।

इन गीतों पर प्राचीनता का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। कुछ गीतों की लय और धुनें वेद मंत्रों जैसी हैं। बीजों की बुआई के बाद का वह समय जब पानी लम्बे अंतराल तक नहीं बरसता, तब कोमल पौधे नष्ट होने लगते हैं। झुलसने लगते हैं। ऐसी विकट परिस्थिति में पेड़-पौधों को त्रासदी झेलनी पड़ती है। ऐसे संकटकालीन समय में भिलाले आसमान की ओर टकटकी लगाकर देवताओं से प्रार्थना करते हैं कि वे पानी बरसायें। जब कभी ऐसी परिस्थिति बनती है तब ये लोग ढुन्डी मनाते हैं। मेघों को मनाने की यह परंपरा है। इस समय गीत गाते हैं:

खोल ओ गोरी झोपिलो मारो घोडो ओभिलो
वाडे कुदी जासे ओ, ओरिस रे बाबा मेघ
ढुडियो - ढुडियो
खुदरा ने खंडळया सुखी गुया ल्हावरा-तितरा तिसे मोरे
गय-गधा भूखा मोरे, ओरिस रे बाबा मेघ
ढुडियों - ढुडियो।

भिलाला रचनाकारों की दृष्टि कृषक जीवन की अभिव्यक्ति में कहीं भी अछूती नहीं रही , उन्होंने सशक्त रचनाएं कीं। कार्तिक मास में छल्ला के लोकगीत धूम मचाते हैं। रात्रि में कभी इस गांव तो कभी उस गांव में युवा जाते हैं और गीत गाते हैं। रात्रि में यह स्वर लहरियां सौम्य वातावरण में रस घोल देती है। यह वह समय होता है, जब मूंग, उड़द, चवला, मक्का को स्वच्छ किया जाता है। इस लोकगीत में इनके सब अनाजों का वर्णन हुआ हैं रात्रि में जब दुनिया सो जाती है, तब नगरों की चकाचौंध से दूर वनवासी

अंचल के लोग गलबहीया डालकर प्रकृति के साथ हर्ष मना रहे होते हैं। प्रकृति लाकगीत की जननी है। प्रकृति के साथ अंतःक्रिया करते हुए ही मानव ने कण्ठ और वाद्य संगीत का विकास किया है। यदि मैं यह कहूं कि मुख और ताली वाद्य-संगीत के पुरोधा हैं तो आप अचंभित न होइये।2 छल्ला गीत बहुत नटखट होता है। उसकी विषय वस्तु ग्राम्य जीवन पर केंद्रित होती है।

तारी टिनटिचा नी टोंगली रे रंगीली दावण जाय
रंगीलो वेले-वेले आवे ते छल्लो भुछयो जाय।
चालो पोहलो चालो।
तारी मोकी माता पाकी रे घोटी भडाका खाय
हांडी भोरी वेरी राबडी ती सुडुक दिन खाय। चालो पोहलो चालो रे।
असु खान्डयो, मिन्डयो, डगरो र रूली-रूली जाय
जे ते जुडा क देखी न भडक्यो तिर बराबर जाय।
चालो पोहलो चालो रे।
बान्डा पूंछडा नू लावरो रे सडबड सडबड जाय
मारा हाथ मा डेंगो ते लेगुस खातो जाय। चालो पोहलो चालो रे।

फाल्गुन से पहले ही बसंत ऋतु प्रारंभ हो जाती है। चहुं ओर बदलावा दिखाई देने लगता है। प्रकृति नूतन रूप धारण करने लगती है। जब बसंत की बयार चलती है , तब पेड़ों पर कोयल कूकने लगती है। इस ऋतु में महुआ फल गिरने लगता है। भिलाला लोककवियों को इस ऋतु ने विचलित किया और उन्होंने इस विषय पर रचनाएं लिखीं। खेतों में खड़े महुआ के पेड़ से गिरते महुआ फल का चित्रण रोचक ढंग से किया। जब मैंने उनके अर्थार्ष को खोलने और खोजने की कोशिश की तो मैं चमत्कृत रह गया और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि निरक्षर कहे जाने वाले आदिवासियों की सामूहिक योजना भी काव्य का श्रेष्ठतम उदाहरण हो सकती है।3 महुआ फल का चित्रण प्राणवंत होकर फूट पड़ा :

उजाडया वन मा महुडी घणी टपके
जो चिरलो चोरी ज्यो चुरी माये पोडसे
पला झाड ना धुड मा डुकाई रहयो चिरलो
वारु-वारु महुडी भाली रहयो ओ।
एनी डाले पली डाले हिन्डी रहयो चिरलो
वारु-वारु महुडी खाई रहयो ओ।

भिलालों का जीवन कृषि एवं मजदूरी पर टिका है। पानी ठीक प्रकार से बरसता है तो फसल अच्छी होती है और अगर वर्षा कमजोर होती है तो संकट उत्पन्न हो जाता है। बोवनी कभी शांतिपूर्वक संपन्न हो जाती है तो कभी बोते समय पानी आ जाता है और बुआई में बाधा आ जाती है। बोवनी के बाद बीज अंकुरित होते हैं मूसलधार वर्षा होती है। ये माह सुरम्य और सुषमा युक्त हो जाता है। तब भिलालों के कण्ठों से गीत प्रस्फुटित होता है। श्रावण मास में गाये जाने वाले गीतों में लोक मर्यादा एवं लोकलाज के समस्त बंधन ढीले पड़ते देखे गये हैं।4

सिडी-सिडी पाणी पोडे, धोडे-धोडे लाउर अण्डा मेले ओ
आइणी थारो डेणच्यो बोइडा धुड मा रोडे ओ।

गेहूं-चना की बुआई जब होती है, तब के लोकगीत भी मिलते हैं। खेती से संबंधित सारे कार्यकलाप का वर्णन इस साहित्य में मिलता है। किसानों का जीवन खेत-खलिहान में परिश्रम करते बीतता है। लेकिन किसी पर्व या अवसर पर उसी जीवन की अभिव्यक्ति को गाकर भिलाला किसान आत्ममुग्ध हो जाता है। शरद ऋतु में गेहूं की बोआई के भावभीने बिम्ब सृजन देखते ही बनता है :

खेडो ओ खराइया खेत
वेरो ओ गेहूं ना बीज

ड्रिरे लिलेरियो वेलो
आयणी डुकाई हिना
सोना न डोल्यो
ड्रिरे लिलेरियो वेलो।

भिलाला लोककवियों ने काव्य के मर्म को समझा, अनुभव किया फिर रचना की। छोटी-छोटी पंक्तियां सजीव व सुंदर भावों का प्रकाशन किया। जब फसलें उग आती हैं , तब हर्षोल्लास के साथ दिवासा पर्व मनाया जाता है। यह पर्व श्रावण मास का है। इस दिन बाबादेव को पूजा जाता है। जब तक पूजन नहीं हो जाता, तब तक चूल्हे पर तवा नहीं रखते। सागौन के पत्ते इसी दिन से उपयोग में लाना प्रारंभ करते हैं। और इसी दिन से बांसुरी , सुप्टा भेरीया एवं पाली बजाना शुरू किया जाता है। अपने रिश्तेदारों को भी आमंत्रित किया जाता है। जिस दिन दिवासा होता है , उस दिन प्रभात से ही पटसन , दाल, हल्दी आदि की पुडियां अपने-अपने घरों के सामने रख देते हैं। दिवासा पर जो लोकगीत गाये जाते हैं , उनमें अधिकांश गीतों में खेती की बातें कही गई हैं :

नीली जुवार उन्ज्यो बाजरो ओर गोरी
गरबो रमण आवली ओ
ऊचो कवल्लो ने थुडे गोइरो ओ गोरी
ग्रबो रमण आवली ओ।

रात्रि में नृत्य का आयोजन होता है। नृत्य में भिलाले लड़के-लड़कियां पारंगत होते हैं। नृत्य में अलगाव अथवा शैथिल्य का अंश नहीं होता। इस समय सौहार्द्र देखते ही बनता है :

इना पुवाडया नी भाजी ओ भाभी रांदवा जावा दे
तारो दळणु दळी देसु ओ भाभी रांदवा जावा दे
तारु ससरू राखी लेसे ओ भाभी रांदवा जावा दे।

जब फसल पक जाती है , तब उन्हें खाने की उत्सुकता सभी में होती है। मूंग की हरी भरी फलियां, हरे-भरे भुट्टे, ककड़ियां, काचरों पर मन ललचाता है। लेकिन जब तक ये लोग इन खाद्य पदार्थों को देवताओं को समर्पित नहीं करते , तब तक खाते नहीं हैं। इसी के उपलक्ष्य में नवाई नामक पर्व मनाकर फसलों का उपयोग करना प्रारंभ करते हैं। भिलालों की मान्यतानुसार फसलों-फलों का उपभोग देवताओं को समर्पित करके ही करना चाहिए। इससे देवता हमारी फसल को कीड़ों एवं बीमारियों से बचाते हैं। फसल पकने के बाद गांव के लोग पटेल के साथ विचार-विमर्श कर लेते हैं कि किस दिन नवाई मनायी जाएगी। एक दिन तय कर लिया जाता है और उस दिन मिलजुल कर नवाई मनायी जाती है। इस दिन के लोकगीतों में कृषक जीवन की अभिव्यक्ति हुई है :

धन-धन ओ मोकाई माता
धन-धन आमरा भाग
ओ बाबादेव तुम्हू ते आमरा
पालण हारो पार लगावण वाला।

नृत्य लोकगीतों में भी कृषक जीवन की अभिव्यक्ति हुई है। श्रंगार रस से ओतप्रोत रचनाओं में ग्राम्य जीवन की झांकी मन मोह लेती है। इस प्रकार के लोकगीत उत्साह एवं उमंग बढ़ाने में अग्रणी होते हैं। निराशा दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन्हें सुनते हैं तो मन नृत्य करने लगता है। व्याकुलता बढ़ने लगती है। ढोलगीया की तालें और फेफरिया का सुर जब फैलता है , तब व्यक्ति नृत्य करने से पीछे नहीं हटता। लड़के-लड़कियां गले में हाथ डालकर थिरकते हुए गीत भी गाते हैं। मिलन के गीतों से वातावरण में रस घुल जाता है। जनजातीय गीतों में बहुप्रचलित शब्द कम हो सकते हैं पर उन थोड़े शब्दों में भी विरह और मिलन की अभिव्यक्ति उतनी ही प्रभावी है ,

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 अगस्त 2016
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

जितनी कि व्याकरण सम्मत भाषाओं के साहित्यिक गीतों में।5

तारा खिसा मां कांगसू न मारा खिसा मा आरसू
चाल वो गोरी अदले-बदले बदले-अदले कोरी ले।
तारा खेत का डोगरा न मारा खेत ना बुकेडा
डोगेरा चरावा नानी बुकेडा चरावा ओ।
मरा खेत मा काकेडी न तारा खेत मा लाकडी
चल वो गोरी अदले-बदले बदले-अदले कोरी ले
तारा हाथ मा रातलो रूमाल मारा हाथ मा रातलो पान
चल वो गोरी अदले-बदले बदले-अदले कोरी ले।

भिलाली लोकगीतों में श्रंगार, करुण, अद्भुत, हास्य रसों का परिपाक हुआ है। अलंकारों का प्रयोग भी हुआ है। लेकिन ये सब स्वाभाविक रूप से आये हैं। भिलाली लोकगीत अन्यान्य गुणों के परिचायक हैं। भिलाली बोली में इन गीतों को गाया जाता है। भिलाले भिलाली बोली बोलते हैं। भिलाली बोली भोलेपन से बोली जाती है। इसे सुनते हैं तो स्नेह का आभास होता है। सुनते ही आत्मीयता की अनुभूति होती है। भिलाली बोली की मृदुता का कारण उसकी विशिष्ट लय है। इस आधार पर बोली की अपनी एक लय होती है। बोलियों की मिठास की बात कही जाती है , जो बोली बोलने में जितनी लयात्मक होगी , मिठास इसी पर निर्भर होगी।6 दो भिलालों को आपस में वार्तालाप करते सुनेंगे तो ऐसा लगेगा कि दो सगे भाई आत्मीयतापूर्वक बातचीत कर रहे हैं। खेतों में क्या-क्या फसलें होती हैं , हास्य रस से युक्त एक लोकगीत का अवलोकन कीजिए :

तुन खेत मा काई-काई वायु रे वायु काका
मारी सोमझ नी आयु।
तून भात-भात नो बीज वायु रे वायु काका
मारी सोमझ नीही आयु।
गिलच्चा भी वाया तुन तोर्या भी वायु
मारा हाथ मा करेलू आयु रे आयु काका
मारा सोमझ नीही आयु
मूंग भी वायु तुन उड़द भी वायु
मारा हाथे मा चवला आया रे आया काका
मारी सोमझ नीही आयु।

वर्तमान साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में भिलाली लोकगीतों की प्रासंगिकता के विभिन्न सोपान हैं। इन कृषक प्रधान लोकगीतों की अभ्यर्थनाएं स्पष्ट सुनाई देती हैं। वन प्रांतरों के बीचोंबीच धनाभाव के कारण भी भिलाले वनवासी इतनी दारुण स्थिति में नहीं है, जितना अन्य समुदाय। अभावों में जीने के उपरांत प्रसन्न दीखते हैं। उनके पास टीवी, कूलर, फ्रीज आदि भौतिक सुख-सुविधाएं नहीं हैं , फिर भी प्रसन्न दीखते हैं। कारों के स्थान पर बैलगाड़ियों , भवनों के स्थान पर झोपड़ियां और रजाई-गादी के स्थान पर गोदड़ियां होने के बाद भी आधुनिक सुख-सुविधाओं से दूर संतोषप्रद जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इस प्रसन्नता का बहुत बड़ा कारण है 'पारस्परिक प्रेम'। जो हिलमिल खायें, हिलमिल रहें वाला भाव है। आज संयुक्त परिवार प्रणाली टूट रही है। नगरों में पड़ोसी एक-दूसरे को जानते तक नहीं हैं। जबकि गावों में कोई अतिथि आता है तो वह पूरे गांव का अतिथि बन जाता है। भिलाली लोकगीत आज भी वन प्रदेश में अपनी आभा बिखेर रहे हैं :

वाडी मा आयो वटलो उजी सणबोर ओ
हामू ने न्हाछ्या दोल जोगी न न्हाछया लोटिया।
विदिला पेरई दऊ ओ चतुर पणियारी
अळतेन नथी आओ रे पान्थ्या भाया जोगी रे।

निष्कर्ष

भिलाली लोकगीतों में गाम्य या कृषक जीवन की अभिव्यक्ति हुई है। कृषक जीवन के सारे बिम्ब गीतों में मिलते हैं। भिलाली लोकगीतों की

अन्यान्य विशेषताओं से ज्ञाता होता है कि कृषक जीवन को इस साहित्य ने प्रमुखता से उभारा है। कृषक जीवन के सभी पक्षों पर लोकगीतों का सृजन हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ

1 हिन्दी प्रदेश के लोकगीत, डॉ..कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन, इलाहबाद

2 भील जनजीवन और संस्कृति, डॉ..अशोक डी.पाटील, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी

3 बारेली गीत, लक्ष्मीनारायण तिवारी, आदिवासी लोक कला, भोपाल

4 बारेला जनजातीय जीवन और संस्कृति, गुलनाज तवर, आदिवासी लोककला, भोपाल

5 मध्यप्रदेश की जनजातीय संस्कृति, डॉ.शिवकुमार तिवारी, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी 2005

6 निमाड़ी संस्कृति और साहित्य, बसंत निरगुणे, आदिवासी लोककला भोपाल 2002